वेदोंका स्वरूप और पारमार्थिक महत्त्व

(प्रो० डॉ० श्रीश्याम शर्माजी वाशिष्ठ)

'वेद' शब्द ज्ञानार्थक '**विद**' धातुसे '**घञ्**' प्रत्यय होकर बना है। अतः वेदका सामान्य अर्थ है ज्ञान। इस ज्ञानमें ज्ञानका विषय, ज्ञानका महत्त्व तथा ज्ञेय आदि सभी कुछ समवेत-रूपमें समाहित हैं। ज्ञानके अतिरिक्त '**विद**' धातु सत्ता-अर्थमें, लाभ-अर्थमें तथा विचारणा आदि अर्थोंमें भी प्रयुक्त होता है। अतएव वेदका अर्थ अत्यन्त व्यापक हो जाता है। इस व्यापक अर्थको लक्ष्यमें रखकर ही वेदकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदः।' अर्थात् धर्मादिपुरुषार्थ जिसमें हैं, जिससे ज्ञात होते हैं तथा जिससे प्राप्त होते हैं, वे 'वेद' हैं।

भारतीयोंके लिये वेद चरम सत्य है। यह सामान्य ज्ञान या विद्यामात्र ही नहीं, अपितु लौकिक-अलौकिक समस्त ज्ञानस्वरूप या ज्ञानका बोधक है। अतएव कहा गया है—'**सर्वज्ञानमयो हि सः**' (मनु० २। ७)। बादमें यही वेद शब्द ज्ञानके संग्रहभूत ग्रन्थके लिये भी प्रयुक्त होने लगा, जिसे भारतीय आस्थाका प्रतीक माना जाता है।

वेदका प्रादुर्भाव

वेदके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें अनेक मत हैं। पाश्चात्त्य एवं पाश्चात्त्य-दृष्टिकोणसे प्रभावित लोग विभिन्न आधारोंपर वेदोंका समय निर्धारित करते हैं, जबकि भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओंमें आस्था रखनेवाले लोग वेदोंको अपौरुषेय

* मूल अरबी कविता आबुके विद्वान् कवि लाबीने लिखी थी। यह कविता दारुन रशीदके दरबारी कवि 'अस्माइ मिले कुशरा'-द्वारा संगृहीत 'सिहल उकुल' नामक पुस्तकमें अंकित है।

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)

आदि भी व्याख्याक्रमसे अस्तित्वमें आये। अतएव आचार्य यास्कने लिखा—'**उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च॥**' यही नहीं, परवर्ती कालमें इतिहास-पुराण भी इनके रहस्योद्घाटनके क्रममें रचे गये। इसीलिये माना जाता है कि इतिहास-पुराणोंके अनुशीलनद्वारा ही सम्प्रति वेदोंका वास्तविक ज्ञान सम्भव है, अन्यथा वेद स्वयं डरते हैं कि कहीं अल्पश्रुत व्यक्ति (अर्थात् भारतीय साहित्य-परम्परासे अनभिज्ञ व्यक्ति) हमपर प्रहार (अनर्थ) न कर दे—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदः मामयं प्रहरिष्यति॥

तात्पर्य यही है कि जो लोग भारतीय साहित्य और परम्पराओंसे अनभिज्ञ हैं या आस्था नहीं रखते, वे वेदोंके साथ न्याय नहीं कर सकते।

वस्तुतः वेद अज्ञात-पुराकालकी ऐसी सारस्वत रचना है, जो भारतीयोंके आस्तिक-नास्तिक धर्मदर्शन, तन्त्र-पुराण, शैव-शाक्त एवं वैष्णव, यहाँतक कि बौद्ध एवं जैन-मान्यताओं एवं प्रेरणाओंका भी स्रोत रहा है। वेद-रूपा विग्रहवती पयःस्विनी सरस्वतीके ज्ञानामृतमय पयोधरोंका पान करके ही परवर्ती युगोंमें निरन्तर भारतवर्षकी संततियाँ निरपेक्षभावसे अपनी ज्ञान-ऊर्जा एवं मनीषाको समृद्ध करती रही हैं।

पाश्चात्त्य विद्वानोंने भी निःसंदेह वेदानुशीलनमें पर्याप्त रुचि ली है और उन्होंने एकमतसे वेदोंके महत्त्वको स्वीकार किया है। किंतु यूरोपीय भौतिकवादी व्याख्या-पद्धतिसे उनकी शाब्दिक विसंगतियाँ, स्वच्छन्द कल्पनाएँ तथा पूर्वाग्रहोंसे विजडित बौद्धिक निःसारता ही प्रमाणित हुई है, वैदिक सत्य बाह्य आवरणसे आवृत ही रहा है। विश्वभरके विद्वान् अपने-अपने प्रयासोंसे प्राप्त तथाकथित सत्यपर भले ही मुग्ध रहे हों, पर आधारभूत पारमार्थिक सत्य उनकी पहुँचसे बहुत दूर ही रहा है—'**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।**' क्योंकि उस सत्यधर्मको अधिगत करनेके लिये भारतीय परम्परागत पद्धतिसे अनुशीलन करना ही सुतरां आवश्यक है।

वेद भारतीयोंकी आस्थाके आधार, जीवनके सर्वस्व तथा परम पवित्र और परम सम्मान्य हैं। मनुमहाराजने इन्हें देव, पितृ एवं मनुष्योंका सनातन चक्षु कहा है— '**देवपितृमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनः।**' मनुके अनुसार इनकी उपयोगिता त्रैकालिक है—'**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।**'

वेदोंका भारतमें जैसा शीर्ष—सम्मान्य स्थान है, विश्वके किसी भी देशमें किसी भी ग्रन्थको वैसा नहीं है। वेद भारतवर्षकी अमूल्य सम्पत्ति हैं। भारतके विद्वानों एवं ऋषि-महर्षियोंने सहस्रों वर्षोंसे बड़ी निष्ठा एवं साधनाके साथ इन्हें कण्ठस्थ-परम्पराद्वारा पूर्ण शुद्ध रूपमें सुरक्षित रखा है। वेदोंके स्वर, मात्रा एवं ध्वनि- तकमें लेशमात्र अन्तर न पड़ जाय, इसी भावनासे गुरुपरम्परा एवं कुलक्रमसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी पदपाठ, जटापाठ, घनपाठ आदिके क्रममें, लोगोंमें विलोम-रीतिसे विन्दुसे विसर्गतककी शुद्धिको सुरक्षित रखते हुए सम्पूर्ण भारतमें वेदोंका अनुशीलन होता रहा है। यहाँतक कि व्याकरण, ज्योतिष आदि भी वेदज्ञानके लिये अपरिहार्य मानकर पढ़े-लिखे जाते रहे हैं। फिर भी कालक्रमसे वेद दुर्गम तथा दुरूह होते गये, जिसके परिणाम-स्वरूप इनका सूक्ष्म पारमार्थिक गुह्य विषय अज्ञेय होता गया। सौभाग्यसे फिर भी निःस्पृह भारतीय विद्वान् निरन्तर ही वैदिक अनुसंधान एवं सत्यानुशीलनमें लगे रहे हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थोंके व्याख्याक्रममें आंशिक सत्यान्वेषण होनेके कारण ही कर्मकाण्डोन्मुखताका चरम विकास हुआ। इसी कालखण्डमें वेदार्थको जाननेका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास महर्षि यास्कने किया, किंतु यह प्रयास भी शब्दोंकी संगति एवं अर्थको समझनेकी सीमातक सीमित था। इन्होंने यथाप्रसंग ऋचाओं एवं शब्दोंके सामान्य अर्थके साथ-साथ अनेकशः आध्यात्मिक अर्थके उद्घाटनका भी बहुमूल्य प्रयास किया है। इनके भी बहुत बाद आचार्य सायण और माधवने वेदभाष्यके रूपमें वेदार्थको समझनेकी बहुमूल्य कुंजी दी, किंतु उन्होंने जहाँ-तहाँ वेदब्रह्मके आध्यात्मिक तत्त्वके उद्घाटनके सार्थक प्रयास करनेपर भी मुख्यतः समग्र रूपमें देववादकी ही स्थापना की है। फलतः परवर्ती कालमें वेदके तात्त्विक ज्ञानको समझना और भी दुरूहतर होता गया।

पारमार्थिक स्वरूप

भारतीय मान्यताके अनुसार वेद ब्रह्मविद्याके ग्रन्थमात्र नहीं स्वयं ब्रह्म हैं, शब्द-ब्रह्म हैं। ब्रह्मानुभूतिके बिना वेद-ब्रह्मका ज्ञान सम्भव ही नहीं है। कहा भी है कि वेद-ब्रह्मके साक्षात्कर्ता ही वेदकी स्तुति (व्याख्या)-के अधिकारी होते हैं—'**अथापि प्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवन्ति**' (निरुक्त ७। १। २)। जो ऋषि नहीं हैं उनको वेदमन्त्र प्रत्यक्ष (स्पष्ट) नहीं होते हैं—'**न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम्**' (बृ० देवता ८। १२६)। स्वयं ऋग्वेदमें उल्लेख है कि ब्रह्मज्ञानी ही ऋचाओंके अर्थको साक्षात् कर सकता है, अन्यथा ऋचाओंसे उसे कोई लाभ नहीं है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥

(ऋक्० १। १६४। ३९)

अर्थात् ऋचाओंका प्रतिपाद्य अक्षर और परम व्योम है, जिसमें सारे देवता समाये हुए हैं। जो उसे नहीं जानता, वह ऋक्से क्या करेगा। जो उसे जान लेता है, वह उसमें समाहित हो जाता है। तात्पर्य है कि जिन्हें तपःपूत आर्षदृष्टि प्राप्त है, वे ही वेद-ब्रह्मके सत्यका दर्शन कर सकते हैं और वे ही वैदिक प्रतीकों, संकेतोंको समझ सकते हैं तथा वैदिक अलंकृत-शैली एवं अर्थगुम्फित वैदिक भाषाके रहस्य-गर्भित सत्यका दर्शन कर सकते हैं।

वैदिक ज्ञान-विज्ञानका स्वरूप—सामान्यतः जिस विद्यासे परमात्माकी व्यापकताको देखा या जाना जाता है, वह ज्ञान है और जिससे उस एकके प्रपञ्चात्मक विस्तारका ज्ञान होता है, वह विज्ञान है। दूसरे शब्दोंमें अनेक रूपोंमें व्याप्त एक-तत्त्वका जानना ज्ञान है तो एक-तत्त्वकी बहुविध व्यापकताको समझना विज्ञान है। वेदोंमें ब्रह्मतत्त्व ज्ञान है और यज्ञ-प्रक्रिया विज्ञान है। ज्ञानस्वरूप ब्रह्म अमृतमय तथा आनन्दमय है, जबकि विज्ञानका तात्पर्य है सृष्टिके लिये कल्याणकारी होना।

वैदिक यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें सजातीय और विजातीय पदार्थोंके मिश्रणसे नये पदार्थकी उत्पत्ति होती है। यज्ञमें अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्मका समन्वय आवश्यक है। प्रकृति ब्रह्मका व्यक्त रूप है। यज्ञसे प्रकृतिकी प्रतिकूलता भी अनुकूल हो जाती है। यज्ञ जीवनका अभिन्न अङ्ग है। यज्ञके अनेक रूप हैं। पञ्चतत्त्वोंका मिश्रण भी यज्ञ है। भौतिक दृष्टिसे यज्ञ-प्रक्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक है। यज्ञ वेदका केन्द्रिय विषय है। अग्नि-विद्या अर्थात् शक्तितत्त्व, संवत्सर-विद्या अर्थात् कालतत्त्व—इन दोनोंका संयुक्त रूप ही यज्ञ-विद्या है। वेद-विद्यामें यज्ञ-विद्या सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। विश्व-रचना तथा पुरुषकी अध्यात्म-रचनाको जाननेके लिये यह आवश्यक है।

वेदमें भूत-विज्ञान एवं दृष्टि-विज्ञानका ही विस्तार है। वेद-विद्या ही सृष्टि-विद्या है। वेद-विद्याके अनुसार विश्वके दो मूल तत्त्व हैं—देवतत्त्व और भूततत्त्व। एक सूक्ष्म है, दूसरा दृश्य। सूक्ष्म देवतत्त्व ही शक्तितत्त्व है। प्रजापति ही वह मूल शक्तितत्त्व है। यही अनिरुक्त-निरुक्त, अमूर्त-मूर्त, ऊर्ध्व-अधः आदि रूपोंसे सृष्टिमें परिव्याप्त है। इसीलिये प्रजापतिको '**अजायमान**' तथा '**बहुधा वि जायते**' के रूपमें कहा गया है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ (यजु० ३१। १९)

अर्थात् प्रजापालक परमात्मा सब पदार्थोंके अंदर विचरता रहता है, वह अजन्मा होकर भी अनेक प्रकारसे (वेदादिरूपोंमें) प्रकट होता है, उसके मूलस्वरूपको ज्ञानीजन देखते हैं, उसीसे सभी भुवन व्याप्त हैं।

सृष्टि-विद्यामें भूततत्त्व ही क्षरतत्त्व है। क्षरसे ही अक्षर जन्म लेता है—'**ततः क्षरत्यक्षरम्।**' अर्थात् क्षरके अंदर ही अक्षर निवास भी करता है। कहा है—'**क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।**' यह क्षर-अक्षर ही सृष्टि है। क्षर भूततत्त्व है तो अक्षर प्राणतत्त्व है, इसे ही अग्नि आदि कहा जाता है। सृष्टिमें त्रिकका अर्थात् त्रिगुण, त्रिलोक, त्रिदेव, त्रिमात्रा, छन्दत्रय, त्रिलिङ्ग एवं त्रिकाल आदिका सविशेष महत्त्व है। मन, प्राण एवं पञ्चभूत भी त्रिकके रूपमें आत्मतत्त्व या जीवनतत्त्व है। कहा गया है—'**वाङ्मयः प्राणमयो मनोमय एष आत्मा।**' विराट् ब्रह्माण्ड भी इस त्रिक-प्रपञ्चका विस्तार है।

विराट् और अणु अर्थात् '**अणोरणीयान्**' और '**महतो महीयान्**'—इन दोनोंका मूल अक्षर-तत्त्व है। वेद-विद्यामें सृष्टि-विद्याके रूपमें इसीका विवेचन है। अक्षर-ब्रह्म

तथा सनातन मानते हैं। इनमें भी कुछ वेदोंको स्वतः आविर्भूत एवं अपौरुषेय मानते हैं, कुछ ईश्वररूप मानते हैं, कुछ ईश्वरके अनुग्रहसे महर्षियोंको प्राप्त (अर्थात् सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्माको या अग्नि, वायु तथा सूर्यको प्राप्त) हुआ—ऐसा मानते हैं। सम्प्रति, आस्थावादी समस्त भारतीय यही मानते हैं कि वेदका प्रादुर्भाव ईश्वरीय ज्ञानके रूपमें हुआ है। अतएव वेद अपौरुषेय, नित्य तथा सनातन हैं। जिस प्रकार ईश्वर अनादि-अनन्त तथा अविनश्वर हैं, वैसे ही वेद भी अनादि-अनन्त तथा अविनश्वर हैं। स्वयं वेदमें इसे ईश्वरकृत बताते हुए लिखा गया है—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

(ऋक्० १०। ९०। ९)

अर्थात् उस सर्वहुत यज्ञ (-रूप परमात्मा)-से ऋग्वेदके मन्त्र तथा सामगान बने, अथर्ववेदके मन्त्र उसीसे उत्पन्न हुए और उसीसे यजुर्वेदके मन्त्र भी उत्पन्न हुए। उपनिषद्ने कहा है कि सृष्टिके आदिमें परमात्माने ही ब्रह्माको प्रकट किया तथा उन्हें समस्त वेदोंका ज्ञान प्राप्त कराया—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

(श्वेताश्वतर० ६। १८)

बृहदारण्यकोपनिषद्में भी वेदोंको परमात्माका निःश्वास कहा गया है—

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। (बृ० उ० २। ४। १०)

वेदको ईश्वरीय ज्ञानके रूपमें ही साक्षात्कृतधर्मा ऋषि-महर्षियोंने अपने अन्तश्चक्षुओंसे प्रत्यक्ष दर्शन किया और तदनन्तर उसे प्रकट किया। इसी कारण महर्षि यास्कने ऋषियोंको मन्त्रद्रष्टा कहा है—'**ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।**'

सामान्य लोग जिस वैखरी वाक्को वेदके रूपमें जानते हैं और अनुशीलन करते हैं, वे वैदिक सूक्तोंके द्रष्टा ऋषि-महर्षियोंको ही वेदोंका कर्ता मानते हैं। इसीलिये कहा गया है—'**इमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः।**' जबकि इन ऋषियोंने वेदोंको प्राप्त किया है, यही इनका ऋषित्व है—**तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्.....तद् ऋषीणामृषित्वम्॥** (निरुक्त २। ३। ११)

तपस्वी ऋषियोंके हृदयमें जो ज्ञान प्रकट हुआ, उसे ही उन्होंने वैखरी वाक्के रूपमें पढ़ाया एवं प्रचार किया—

यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिः॥

(श० प० ब्रा० ४। ३। ९)

महर्षि यास्कने इसी तथ्यको प्रकट करते हुए लिखा है—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। ते अवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। (निरुक्त १।६।२०)

वेद-संख्या

ऋषियोंने वेदका मनन किया, अतः वे 'मन्त्र' कहलाये, छन्दोंमें आच्छादित होनेसे 'छन्द' कहलाये (**'मन्त्रा मननात्', 'छन्दांसि छादनात्।'**)। वह ज्ञान मूलतः एक था, किंतु शाखाओंके भेदसे विभिन्न संहिताओंमें संगृहीत हुआ—'**वेदं तावदेकं संत अतिमहत्तत्त्वाद् दुरध्येयमनेकशाखाभेदेन समाम्नासिषुः।**' (निरुक्त)

यद्यपि '**वेदास्त्रयस्त्रयी**' तथा '**चत्वारो वेदाः**' दोनों मान्यताएँ प्रचलित हैं। अतः कुछ तीन तो कुछ चार वेद मानते हैं। वस्तुतः रचनाभेद अर्थात् गद्य-पद्य एवं गान-रूपके कारण तीन वेद माने गये हैं। अर्थवश पाद-व्यवस्थित छन्दोबद्ध मन्त्र ऋक् कहलाये—'**तेषामृग् यथार्थावशेषपादव्यवस्था।**' (जै० सू०), ऋचाएँ साम कहलायीं '**गीतिषु सामाख्या।**' (जै० सू०), गद्य-प्रधान होनेसे यजुष् कहलाये '**गद्यात्मको यजुः।**' अतः यजुर्वेदमें जो भी छन्दोबद्ध मन्त्र हैं, वे ऋक् ही कहलाते हैं और अथर्वका गद्य-भाग यजुः कहलायेगा।

किंतु यज्ञके कार्य-सम्पादनमें चार विशिष्ट वेद-मन्त्रज्ञ ऋत्विक् होते हैं—होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा। वेद भी चार होते हैं। माना जाता है कि वेदके ये विभाग वेदव्यासने किये (**'वेदान् विव्यास वेदव्यासः'**)।

वेद भारतीयोंके लिये परम पवित्र पारमार्थिक ग्रन्थ हैं, किंतु ये गहन एवं गूढ हैं। वेद-ज्ञानके द्रष्टा ऋषि-महर्षियोंको इनका तात्त्विक ज्ञान था, परंतु कालक्रमसे ये जब और भी कठिन तथा पहुँचके बाहर होते गये तो उनके व्याख्याग्रन्थ रचे गये। कुछ लोग मन्त्रभागको ही वेद मानते हैं तथा वेदोंके सर्वप्रथम रचे गये व्याख्याग्रन्थ-ब्राह्मणोंको पृथक् ग्रन्थ मानते हैं, जबकि विस्तृत अर्थमें मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद कहे जाते हैं। अतः कहा भी है— '**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।**' धीरे-धीरे ये भी दुरूह होते गये, बादमें आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदाङ्ग

अयौगिक है और यज्ञ यौगिक। अयौगिक तत्त्व ही सृष्टिका आधार है। अयौगिक ब्रह्म ही सृष्टिमें अनेक रूपोंमें व्यक्त है। यही सहस्रात्मा अनन्त है। वैदिक ज्ञान-विज्ञानके रूपमें व्याख्यायित इस गुह्य वेद-विद्या तथा वेद-ब्रह्मकी अनुभूति एवं अभिज्ञानके लिये आर्ष-पद्धतिका अनुसरण अपरिहार्य है। आर्षपद्धतिके अनुरूप मानसिकतासे ही अर्थगूढ आलंकारिक शैली एवं प्रतीकों तथा सांकेतिक मिथकोंके रहस्योद्घाटन होनेपर वेदके गुह्य अर्थकी संगति बैठती है और वेद-ब्रह्म तथा वेद-विद्याके सत्यदर्शनसे आधुनिक भौतिकवादसे कुण्ठित तथा पाश्चात्त्य भोगवादी संस्कृतिसे आक्रान्त लोगोंके विरोध-अन्तर्विरोध, आरोप-प्रत्यारोप एवं आक्षेपोंका स्वतः समाधान हो जाता है। जैसे—वेदमें पशु, रश्मि एवं प्रकाशवाचक 'गो' शब्दका बहुशः प्रयोग हुआ है, किंतु इसका अर्थ आत्मज्योति करनेपर ही सर्वत्र संगति बैठनेके साथ अर्थकी गरिमा भी प्राप्त होती है। 'अश्व'-का अर्थ आत्मशक्ति करनेपर गोमेध और अश्वमेधको लेकर किये जानेवाले कुतर्क स्वतः शान्त हो जाते हैं।

वेद-प्रयुक्त इन्द्र-अग्नि आदिका परमात्मशक्ति, वृत्रका मलिनतासे आवृत करनेवाला, अर्णव शब्दका तेजःपुंज, क्षीरसागरका अमृतमय अनन्तसत्ता आदि अर्थ करनेपर वेदके गुह्यार्थकी अनुभूति होती है। इसी प्रकार **'ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्.....' तथा 'अग्निमीळे पुरोहितं.....'**—आदि मन्त्रोंका लौकिक-शाब्दिक ही नहीं आध्यात्मिक अर्थ करनेपर वैदिक ऊर्जा एवं वेद-ब्रह्मकी अनुभूति होती है और वेदार्थको आध्यात्मिक आयाम मिलता है तथा **'चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य.....'** एवं **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते.....'** आदि मन्त्रोंके आध्यात्मिक अर्थ करनेसे ही इनके सम्बन्धमें कुतर्क करनेवाले स्वतः निरुत्तर हो जाते हैं।

निष्कर्षतः वेदोंमें लौकिक जीवनोपयोगी विविध सामग्री प्राप्त होनेपर भी वेद मानव-जातिकी सांस्कृतिक धरोहर हैं और सनातन ज्ञानगर्भित आध्यात्मिक सुमेरु हैं। अतः इनके अनुशीलनसे प्राप्त ज्ञान-विज्ञान-सम्मत तत्त्वज्ञानसे ही मानव-जातिको अमृतत्व और दिव्यत्व प्राप्त हो सकता है तथा विश्वभरका सुतरां कल्याण हो सकता है। यही इनका पारमार्थिक महत्त्व है।